प्राचीन भारत मे नारी शिक्षा (एक अनुशीलन)

संगीता मिश्रा

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, पण्डित ललित मोहन शर्मा परिसर ऋषिकेश.

सारांश

नारी सृष्टि का आधार हैं, संस्कारों की संवाहक है, करुणा एवं ममता की मूर्ति हैं।

नारी सदैव मानव इतिहास की प्रधान व प्रमुख पात्र रही हैं। वह सदैव अपने युग की सभ्यता का प्रतीक बनकर रही हैं। भारतीय संस्कृति में एक ओर अर्द्धनारीश्वर की कल्पना कर पुरुष और नारी की समानता को सिद्ध किया गया है, तो दूसरी तरफ पंचकन्या के रुप में नारी के आदर्श स्वरुप को प्रतिष्ठापित किया जाता हैं।

भारतीय संस्कृति में नारी के कई रुपों का वर्णन मिलता हैं। कन्या, माता, गृहणी प्रत्येक रुप में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। माता के रुप में उसे शिक्षक से अधिक गौरवशाली माना गया हैं।

भारतीय धर्मशास्त्र में नारी को सर्वशक्ति सम्पन्न माना गया है तथा विद्या, शील, ममता, यज्ञ एवम् सम्पत्ति का प्रतीक समझा गया हैं।

शिक्षा, धर्म एवम् सामाजिक विकास में नारी का महान योगदान था। वह स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी। निश्चित रुप से नारी शिक्षा किसी भी समाज की उन्नति अथवा अवनति का द्योतक होती हैं। ऋग्वैदिक काल में नारी को पुरुष के समान उपनयन संस्कार और वैदिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। ऋग्वेद में घोषा, अपाला, रोमाशा, विश्वधारा, लोपामुद्रा, इन्द्राणी आदि ब्रह्मवादिनी मंत्रद्रष्ट्री ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है। उत्तर वैदिक काल में नारी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। बौद्ध एवम् जैन साहित्य से भी विदुषी नारियों का उल्लेख मिलता हैं। स्मृतिकाल में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों से नारी-शिक्षा का प्रसार प्रायः अवरुद्ध सा हो गया था। पूर्व मध्य युग तक आकर नारी शिक्षा एकमात्र उच्च वर्ग तक ही सीमित रह गयी।

मूल शब्द - भारतीय संस्कृति, नारी-शिक्षा, ऋषिका, मन्त्र, विदुषी, संस्कार।

प्राचीन भारत में नारी शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

काल और परिस्थितियों के अनुरूप भारतीय इतिहास में नारी-शिक्षा के स्तर में निरन्तर परिवर्तन होता रहा हैं। वैदिक काल में नारी-शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी। वह पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करती थी। ए, एस, अल्तेकर के अनुसार ऋग्वैदिक काल में पुत्रों के समान पुत्रियों का भी उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था।[1] इस युग में पुत्र के समान पुत्री का भी विद्यारंभ से पूर्व उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था तथा वह भी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुयी विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करती थी। उसे वेदाध्ययन और यज्ञ-सम्पादन का पूर्ण अधिकार था। ऋग्वेद में उल्लिखित हैं कि अनेक विदुषी नारियों ने ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना में योगदान किया। वैदिक मन्त्रों का छन्दों में वर्णन प्राप्त होता हैं, जिनमें से अनेक मन्त्रों में छन्दों का उल्लेख मिलता हैं।[2] सर्वप्रथम छन्द एक था।[3] जो बाद में अपने विभिन्न रूपों को ग्रहण करता हुआ चतुरक्षर वृद्धि को प्राप्त कर सात प्रकार का हो गया।[4] इन प्रमुख सात छन्दों के नाम हैं - गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप एवम् जगती। इनका वैदिक मन्त्रों में प्रयोग मिलता हैं। ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा छन्दकार ऋषियों में महिला ऋषिकाओं का साहित्यिक दृष्टि से विशेष योगदान रहा हैं, जिनकी ऋचाएं प्रथम मण्डल से दशम मण्डल तक ऋग्वेद में यत्र-तत्र मिलती हैं। कुछ प्रमुख ऋषिकाएं हैं - अदिति, देवजामि, सर्पराज्ञी कद्रू, दक्षिणा, इन्द्राणी, शची पौलोमी, सूर्या सावित्री, यमी वैवश्वती, वाक् आम्भृणी, श्रद्धा, कामायनी, लोपामुद्रा, अगस्त्यस्वसा, शाश्वती, इन्द्रस्नुषा, जुहु, रोमशा, ममता, अपाला, विश्ववारा, घोषा, उर्वशी, रात्रि एवम् गौरिवीति। वैदिक काल में नारी पति के साथ समान रूप से यज्ञ में सहयोग करती थी।[5] सूत्रकाल में भी नारी यज्ञ-सम्पादन में भाग लेती थी।[6] मनुस्मृति में कन्या के लिए उपनयन का विधान हैं।[7] वैदिक काल में छात्राओं के दो वर्ग थे - प्रथम सद्योवधु एवम् द्वितीय ब्रह्मवादिनी। सद्योवधु वर्ग में वे छात्राएं आती थी, जो विवाह के पूर्व तक कुछ वेद-मंत्रों और यज्ञ से सम्बन्धी प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त करती थी। ब्रह्मवादिनी में छात्राओं का वह वर्ग आता था, जो विद्यार्जन करने में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देता था। ध्यातव्य हैं कि भारतीय समाज में स्त्रियों का शैक्षिक आधार वैदिक काल में उच्च स्तर तक पहुँच गया था। अनेक विदुषी नारियों के सहयोग से सम्पूर्ण संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति समग्र विश्व की प्रथम संस्कृति बनी "सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्वा"। प्रायः स्मृति ग्रन्थों में नारी के शिक्षापरक कर्तव्यों का विधान उल्लिखत हैं। घोषा द्वारा अति निर्भीकता के साथ नारी के मौलिक अधिकारों को अभिव्यक्त किया गया हैं :-

जीवंरुदन्तिवि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः।
वाम पित्र्यों य इदं समेरिरे मयः पितृभ्यां जनयः परिवृजे।।[8]

वैदिक काल में विदुषी नारियां उच्च शिक्षा की प्राप्ति के साथ-साथ वाद-विवाद प्रतियोगिता में भी प्रतिभाग करती थीं। गार्गी और मैत्रेयी जैसी दार्शनिक विदुषियां राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करने के लिए गई थीं।[9] मैत्रेयी ने वाल्मीकि एवम् अगस्त्य जैसे ब्रह्मर्षियों से वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करके ख्याति अर्जित की थी।[10] कौशल्या एवम् तारा दोनों ही मन्त्रों की ज्ञाता थी तथा सीता प्रतिदिन वैदिक प्रार्थनायें करती थी।[11]

महाभारत के अध्ययन से यह ज्ञात होता हैं कि द्रौपदी 'विदुषी' थी। महाभारत के बाणपर्व में द्रौपदी को "प्रिया च दर्शनीया च पंडिता च पतिव्रता" गुणों से अलंकृत किया गया हैं। कृष्ण, भीम, युधिष्ठिर तथा सत्यभामा के साथ धर्म एवम् नैतिकता जैसे सारगर्भित एवम् उच्च विषयों पर उनकी वार्ता एक शिक्षित नारी की छवि को इंगित करती हैं। वे स्पष्टतः कहती हैं कि उन्होंने अपने भाइयों के साथ अपने पिता द्वारा नियुक्त एक ब्राह्मण शिक्षक से बृहस्पति-नीति का ज्ञान प्राप्त किया था।[12]

बौद्ध काल में प्रायः नारियां विदुषी और शिक्षित होती थीं। शिक्षा, धर्म और दर्शन के प्रति नारियों की रुचि होती थी। उस काल की उच्च शिक्षा प्राप्त नारी भिक्षुणी खेमा थी। बौद्ध साहित्य संयुक्त निकाय में व्याख्यान देने में विख्यात सुभद्रा नामक भिक्षुणी का उल्लेख मिलता हैं। थेरीगाथा की कवियित्रियों में 32 आजीवन ब्रह्मचारिणी एवम् 18 विवाहिता भिक्षुणियां थीं, जिनमें शुभा, सुमेधा और अनोपमा उच्च वंश की कन्यायें थीं।[13] भद्राकुण्डकेशा राजगृह के सेठ की कन्या महान विदुषी थी।

जैन साहित्य से भी अनके विदुषी नारियों के दृष्टान्त मिलते हैं। लोकव्यवहार, लोकगीत, गायन, वादन, नृत्य आदि के माध्यम से भी कन्या परंपरागत शिक्षा ग्रहण करती थी। हरिवंशपुराण आदि जैन पुराणों के रचनाकाल में नारी शिक्षा के उत्थान के लिए जैन आचार्यों ने अपनी लेखनी के माध्यम से प्रयास किये हैं। हाल की गाथा सप्तशती में सात कवियित्रियों की रचनाएं

द्रष्टव्य हैं। शील भट्टारिक परम् विदुषी के रूप में विख्यात थी। राजशेखर की भार्या कवि एवम् टीकाकार दोनों ही गुणों से युक्त थी। महावीर स्वामी की धर्मसभा में जयन्ती द्वारा की गई धार्मिक चर्चा आदि से तत्कालीन नारी का शिक्षित समाज द्योतित होता हैं। जैन पुराणों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन नारी को गोष्ठियों में विचारों का आदान-प्रदान करने की स्वतंत्रता थी। जैन आगम साहित्य में पुरूषों के लिए 72 कलाओं का तथा स्त्रियों के लिए 64 कलाओं का उल्लेख मिलता हैं।

नारी को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता थी। अनेक नारियां शिक्षिका के रूप में अति निष्ठापूर्वक अपने कार्य को सम्पन्न करते हुए जीवन व्यतीत करती थी ऐसी स्त्रियों को उपाध्याया कहते थे।[14] ये उपाध्याया छात्राओं को अध्यापन कार्य के साथ-साथ अन्य विषयों में भी पारंगत करती थी। पाणिनि द्वारा महिला शिक्षण-शाला का भी उल्लेख किया गया हैं-''छात्रयादय शालाग्राम''। उस समय सह-शिक्षा भी प्रचलन में थी। वाल्मीकि आश्रम में लव और कुश के साथ आत्रेयी ने शिक्षा ग्रहण की थी। कामन्दकी ने भूरिवसु और देवराट् के साथ गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण की थी। मालती माधव में उल्लिखत हैं –

'अयि किं न वेत्सि यदेकत्र नो विद्यापरिग्रहाय
नानादिगन्तवासिनां साहर्चमासीत्।' [16]

पुराणों के अनुसार उस समय नारी-शिक्षा के दो प्रकार थे - प्रथम आध्यात्मिक एवम् द्वितीय व्यवहारिक। वायु पुराण में उल्लिखत हैं -

बृहस्पतेस्तुभगिनी भुवनाब्रह्मवादिनी।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत।।[17]

आध्यात्मिक ज्ञान में बृहस्पति भगिनी भुवना, एकपाटला[18], मेना धारिणी[19] शतरूपा [20] आदि ब्रह्मवादिनी कन्याओं का उल्लेख हुआ हैं। मत्स्य पुराण में उल्लिखत हैं -

पासा देहार्द्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी।
शतरूप शतेन्द्रिय.....।।

गृह में निवास करते हुए कन्याओं को गार्हस्थिक शिक्षा का भी ज्ञान होता था। पूर्ववैदिक युग में अपाला नामक कन्या अपने पिता के कृषि कार्य में सहयोग प्रदान करती थी।[21] उस युग में कन्या ललित कला में भी पारंगत होती थी। उत्तरवैदिक युग में कन्या व्यवहारिक शिक्षा में नृत्य, संगीत, गायन, चित्रकला आदि की शिक्षा प्राप्त करती थी।[22] रामायण और महाभारत में स्त्रियों के नृत्य, गायन और संगीत के यत्र-तत्र विवरण उपलब्ध हैं।

व्यावहारिक रूप से द्वितीय शताब्दी ई पू0 तक स्त्री का उपनयन संस्कार समाप्त हो चुका था। मनुस्मृति में उल्लिखत हैं –

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिको मतः।
पतिसेवा गुरौवासो गृहार्थोग्नि परिक्रिया।।[23]

अर्थात् पति ही कन्या का आचार्य, विवाह ही उसका उपनयन संस्कार, पति की सेवा ही उसका आश्रम-निवास तथा गृहस्थी के कार्य ही दैनिक धार्मिक अनुष्ठान थे। पूर्व मध्य युग तक आकर नारी शिक्षा समाप्त सी हो गई थी। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो नारी शिक्षा एकमात्र अभिजात वर्ग तक ही सीमित थी। प्रायः अभिजात वर्ग की नारी काव्य, संगीत, नृत्य, वाद्य और चित्रकला में भी दक्ष होती थी।[24] 'गाथासप्तशती' में अनेक विदुषी स्त्रियों का उल्लेख मिलता हैं। बाणभट्ट ने हर्षचरित में राज्य श्री के लिए लिखा हैं - 'अथ राज्यश्रीरपिनृत्यगीतादिषु विदग्धासु सखीषु सकलासु कलासु च प्रतिदिननुपचीयमानपरिचया शनैः शनैः अवर्द्धत।'[25] अर्थात् राज्यश्री नृत्यगीत आदि में जानकार सहेलियों के मध्य सम्पूर्ण कलाओं का प्रतिदिन ज्यादा से ज्यादा परिचय प्राप्त करते हुए धीरे-धीरे बढ़ रही थी। इस काल में अनेक ऐसी भी नरियां हुयी, जिनका साहित्य जगत में अतुलनीय योगदान रहा। कवि राजशेखर की भार्या अवन्ति सुन्दरी उच्च कोटि की कवियित्री एवं टीकाकार थी।[26] शंकरदिग्विजय में मंडनमिश्र की विदुषी पत्नी का उल्लेख मिलता हैं, जो तर्क मीमांसा, वेदान्त आदि का ज्ञान रखती थी।[27]

प्राचीन भारत के इतिहास में ऐसी नारियों के भी दृष्टान्त मिलते हैं जो राज्य प्रशासन संचालन में कुशल थी। द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में आन्ध्र सातवाहन वंश की राजमाता नयनिका ने अपने अल्पवयस्क पुत्र का संरक्षण करते हुए राज्य की सत्ता स्वयं सम्भाली थी। गुप्त काल में चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती गुप्त (चौथी सदी) ने अपने पति वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय की मृत्यु के बाद अपने पुत्र के अल्पव्यस्क होने पर स्वयं प्रशासन का भार सम्भाला था। ए. एस. अल्तेकर के अनुसार गुप्तकाल में कौमुदी महोत्सव नामक नाटक की रचना विद्या और विज्जिका नामक स्त्री द्वारा की गई थी।[28] गुजरात की चालुक्य वंशी रानी अक्का देवी और भैला देवी ने राज्य का प्रशासन अति बुद्धिमत्ता एवम् निष्ठा से किया था।[29] के. सी. श्रीवास्तव के अनुसार चालुक्य वंशीय रानियां अत्यन्त विदुषी थी।[30]

निश्चित रूप से भारतवर्ष संस्कारों का देश हैं। वस्तुतः आज की नारी के समक्ष प्राचीनकाल की नारी से कहीं अधिक दायित्व हैं। वर्तमान परिपे्रक्ष्य में नारी के सम्मान एवं प्रतिष्ठा से ही समाज, देश एवम् संसार उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा तथा साथ ही यह समय की मांग और आज की नारी का भी यह

प्रमुख दायित्व हैं कि वे प्राचीन एवम् अर्वाचीन संस्कारों को हृदयंगम करते हुए राष्ट्र को एक नई दिशा एवम् गति प्रदान करें तभी एक स्वस्थ, शिक्षित एवम् उत्पादक भारत की कल्पना साकार हो सकती हैं। आवश्यकता इस बात की भी हैं कि आज के युग में स्त्री एवम् पुरुष दोनों ही भौतिकतावादी प्रवृत्तियों को कम करें तथा स्वयं में त्याग एवं समर्पण आदि उच्चतर मूल्यों की भावना का विकास करें तभी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चिद् दुःख भाग्भवेत' की आर्षवाणी चरितार्थ होगी।

References

1. अल्तेकर, ए0 एस0, एजुकेशन इन एंशयिंट इण्डयिा, पृष्ठ सं0 204-06
2. ऋग्वेद 10/130/4-5, यजुर्वेद-14/18
3. 'एकं छन्दो बहुधा .... वाक्यपदीय 1/121
4. सात छन्दांसि चतुरक्षराण्यन्योऽन्यस्मन्निध्यर्पतानि। अथर्ववेद 8/9/19
5. ऋग्वेद 8.31, या दम्पत सुिमनसा आ च धावतः। देवा सो नत्यिया शरि।
6. पा0 गृ0 सू0, 2.20, स्त्रयिश्चोपयजेरम्ना चरत्विात्।
7. मनु0 2.66
8. ऋग्वेद 10/40/10
9. डॉ0 एस0 एन0 पाण्डेय, संस्कृत साहत्यि का आलोचनात्मक इतहिास, पृष्ठ सं0 67
10. उत्तर रामचरतिम् अंक 2, तेभ्योऽधगिन्तु नगिमान्तशक्षिां वाल्मीकि पाश्र्वादहि संचरामि।
11.रामायण, 2.20.75, 5.15.48
12. श्रीवास्तव, के0 सी0, प्राचीन भारत का इतहिास तथा संस्कृत,ि पृष्ठ सं0 107
13. हार्नर, वमिेन अंडर प्रमिटिवि बुद्धज्मि, दूसरा अध्याय
14. पतंजली 3.822, उपेत्याधीते अस्याः सा उपाध्यायां
15. उत्तररामचरतिम्, अंक 2
16. मालतीमाधव, अंक।
17. वायुपुराण, 66.27
18. वायुपुराण, 72.13-15, ब्रह्मण्ड पुराण, 3.10.15-16
19. वष्णिु पुराण, 3.10.19, वायुपुराण 30.28-29, ब्रह्माण्ड पुराण, 2.13-30
20. मत्स्य पुराण 4.24
21. ऋग्वेद 8.91.5-6
22. तै0सं0 6.1.6-5, श0ब्रा0 14.3.1.35
23. मनुस्मृत,ि 2.67
24. काव्य मीमांसा, पृ0 53
25. हर्षचरति 4, 230
26. कर्पूर मंजरी 1.11
27.शंकर दग्विजिय, 8.51
28. अल्तेकर, ए0 एस0: एजुकेशन इन एंशयिंट इण्डयिा, पृष्ठ सं0 219
29. इंडयिन एंटक्वेिरी भाग 9, पृ0 274, भाग 18, पृ0 37
30. श्रीवास्तव, के0 सी0: पृष्ठ सं. 680